International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)

E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

जन सहभागिता का बदलता परिदृश्य : भारत में पारंपरिक जनमंचों से डिजिटल सक्रियता तक (2020–21 के किसान आंदोलन के विशेष संदर्भ में)

डॉ. दीक्षा सिंह

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, ए.एन.डी.एन.एन.एम. महाविद्यालय, हर्षनगर, कानपुर।

प्रस्तावना

लोकतंत्र की बात प्रायः हम चुनावों, राजनीतिक पार्टियों और सरकारों के संदर्भ में करते हैं। इससे लोकतंत्र की तस्वीर का एक जरूरी हिस्सा उभरकर तो आता है पर पूरी तस्वीर नहीं बनती। लोकतंत्र की सामाजिक उपस्थिति उन प्रक्रियाओं में भी दिखाई देती है जिनके माध्यम से आम नागरिक किसी मुद्दे को सार्वजनिक प्रश्न बनाते हैं। किसी गाँव में किसानों की बैठक, किसी शहर में नागरिकों की सभा, किसी विश्वविद्यालय में छात्र आंदोलन, या फिर किसी राज्य में सड़क पर उतरता हुआ जनसमूह। ये सभी लोकतांत्रिक व्यवहार के अलग-अलग प्रतीक चिन्ह हैं। भारतीय समाज में ऐसी सहभागिता कोई नई घटना नहीं है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय राजनीतिक भागीदारी के कई रूप स्वतःस्फूर्त विकसित हुए। स्थानीय सभाओं, सत्याग्रह, बहिष्कार, जुलूस और जनसभाओं के माध्यम से लोगों ने राजनीति को अपने दैनिक जीवन में शामिल किया। आज़ादी के बाद चुनावी लोकतंत्र का विस्तार हुआ, लेकिन राजनीतिक भागीदारी की सामाजिक जमीन बनी रही। पारंपरिक पंचायत और ग्रामसभा जैसे स्थानीय संस्थागत मंचों के साथ किसान संगठन, मजदूर यूनियन, जातीय संगठन, महिला संगठन और विभिन्न सामाजिक आंदोलनों ने नागरिकों को सामूहिक कार्रवाई के अवसर दिए। फिर भी जन सहभागिता को लेकर भारत की स्थिति सरल नहीं रही है। हर व्यक्ति की आवाज बराबर प्रभावी नहीं होती। सामाजिक हैसियत, जाति, वर्ग, शिक्षा, आर्थिक स्थिति, संगठनात्मक क्षमता और राजनीतिक संपर्क नागरिक की सार्वजनिक उपस्थिति को प्रभावित करते हैं। यही कारण है कि जनमंच मौजूद होने और जन सहभागिता वास्तव में समावेशी होने के बीच अंतर बना रहता है।

1991 के बाद यह परिदृश्य एक दूसरी दिशा में बदला। आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण ने आर्थिक संबंधों के साथ-साथ राजनीतिक संचार के ढाँचे को भी बदला। निजी समाचार माध्यमों की भूमिका बढ़ी, टेलीविजन का प्रभाव तेजी से विस्तृत हुआ और बाद में इंटरनेट तथा सोशल मीडिया ने सार्वजनिक संवाद की सीमाओं को और बढ़ा दिया। संलग्न शोध-पाठ में इस अवधि को पारंपरिक नागरिक सहभागिता से डिजिटल सहभागिता की ओर बढ़ते संक्रमण की अवधि के रूप में रेखांकित किया गया है। जहाँ एक तरफ 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के बाद स्थानीय लोकतंत्र को संस्थागत आधार मिला, वहीं दूसरी तरफ सूचना प्रौद्योगिकी ने राजनीतिक संवाद के लिए एक नया स्पेस तैयार किया। इसी बदलते संदर्भ में 2020-21 का किसान आंदोलन सामने आया। तीन कृषि कानूनों का विरोध करते हुए शुरू हुआ यह आंदोलन भारतीय लोकतंत्र में जन लामबंदी के उन रूपों को सामने लाता है जिनमें पारंपरिक संगठन, भौतिक धरना, सामुदायिक संसाधन, राष्ट्रीय मीडिया और डिजिटल नेटवर्क एक साथ काम करते हैं। यह आंदोलन मूल संदर्भ में दिल्ली की सीमाओं पर दिखाई देता था, लेकिन उसका राजनीतिक विमर्श देश के अलग-अलग हिस्सों और इंटरनेट के माध्यम से विदेशों तक पहुँच रहा था। यहाँ से एक महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रश्न उठता है-क्या डिजिटल

सक्रियता ने पुराने जनमंचों का स्थान ले लिया है? उपलब्ध सामग्री से ऐसा निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा। बल्कि किसान आंदोलन के उदाहरण से यह समझ आता है कि पुराने और नए मंचों का संबंध अधिक जटिल है। एक ओर डिजिटल माध्यम ने सूचना को तेजी से फैलाया, दूसरी ओर आंदोलन की स्थायित्व और संगठनात्मक शक्ति पारंपरिक किसान संगठनों तथा सामाजिक नेटवर्कों से जुड़ी रही। इसी अंतर्संबंध को collective mobilization model माना जाता है।

जन सहभागिता : अर्थ और भारतीय संदर्भ

राजनीति विज्ञान में राजनीतिक भागीदारी का सामान्य अर्थ उन गतिविधियों से लिया जाता है जिनके माध्यम से नागरिक राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। मतदान करना, चुनाव लड़ना, राजनीतिक दल की सदस्यता लेना, प्रतिनिधियों से संपर्क करना, याचिका दायर करना, विरोध प्रदर्शन और सामूहिक आंदोलन में हिस्सा इसके विभिन्न रूप हैं। लेकिन भारतीय संदर्भ में राजनीतिक सहभागिता को केवल औपचारिक संस्थाओं तक सीमित करना ही पर्याप्त नहीं है। थोड़ा गहरे देखें तो भारत में सार्वजनिक जीवन का बड़ा हिस्सा स्थानीय सामाजिक संबंधों के माध्यम से प्रबंधित होता रहा है। गाँव की बैठकों में किसी सड़क, सिंचाई, बिजली, घर के विवाद, बाजार या स्थानीय शासन के प्रश्न पर चर्चा भी राजनीति का हिस्सा है। किसानों की फसल के दाम और कृषि नीति पर बातचीत भी राजनीतिक सहभागिता है। जब लोग किसी नीति के विरोध में संगठित होकर धरना देते हैं, तब वे केवल विरोध नहीं कर रहे होते, वे सार्वजनिक क्षेत्र में अपनी मांग को राजनीतिक रूप से रख रहे होते हैं। जन सहभागिता की यही व्यापक समझ हमें यह देखने में मदद करती है कि नागरिक और राज्य के बीच संबंध केवल चुनावी संपर्क से नहीं बनता। नागरिक कई बार चुनावों के बीच भी सरकार की नीतियों पर अपनी राय प्रकट करते हैं। वे अपने संगठनों के माध्यम से दबाव बनाते हैं, मीडिया में अपनी बात रखते हैं, अदालतों में जाते हैं और सड़क पर आंदोलन करते हैं। भारत में यह सहभागिता सामाजिक संरचना से जुड़ी हुई है। जिस व्यक्ति के पास संसाधन, समय, संगठनात्मक संबंध और सामाजिक नेटवर्क अधिक हैं, उसके लिए सार्वजनिक राजनीति में भागीदारी अपेक्षाकृत आसान होती है। वर्बा, श्लोज़मैन और ब्रैडी का *Civic Voluntarism Model* इसी पहलू पर जोर देता है। उनके अनुसार राजनीतिक भागीदारी के लिए संसाधन, राजनीतिक संलग्नता और सामाजिक भर्ती के नेटवर्क महत्वपूर्ण हैं (Verba, Schlozman, & Brady, 1995)। डिजिटल माध्यम इस पूरी प्रक्रिया को किस हद तक बदलते हैं, यह आज भारतीय राजनीति के अध्ययन का जरूरी सवाल है।

पारंपरिक जनमंचों की राजनीति

भारतीय ग्रामीण समाज में जनमंचों की अवधारणा का अपना सामाजिक इतिहास है। पंचायत और ग्रामसभा औपचारिक संस्थाएँ हैं, लेकिन चौपाल, किसान सभा और सामुदायिक बैठकें अधिक अनौपचारिक सामाजिक मंचों के रूप में भी काम करती रही हैं। इन मंचों पर राजनीतिक विचार केवल औपचारिक भाषणों के माध्यम से नहीं बनते। रोजमर्रा की बातचीत, साझा अनुभव और स्थानीय विवाद भी राजनीतिक समझ का हिस्सा बनते हैं।

1. पंचायत और ग्रामसभा

स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने ग्रामीण नागरिकों को राज्य के स्थानीय स्तर से जोड़ने का काम किया है। 73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायतों को संवैधानिक दर्जा मिलने से विकेंद्रीकरण को संस्थागत रूप मिला। ग्रामसभा ने भी नागरिकों के लिए सार्वजनिक प्रश्नों पर चर्चा का एक औपचारिक मंच उपलब्ध कराया। हालाँकि पंचायत व्यवस्था को पूरी तरह समावेशी मानना कठिन है। स्थानीय शक्ति संबंध अक्सर पंचायत की कार्यप्रणाली पर असर डालते हैं। जमीन, जाति, आर्थिक स्थिति और स्थानीय राजनीतिक प्रभाव के आधार पर लोगों की आवाज का वजन अलग-अलग हो सकता है। इसलिए संस्थागत मंच उपलब्ध होना अपने आप में समान सहभागिता की गारंटी नहीं है।

2. चौपाल

चौपाल भारतीय गाँव की राजनीतिक संस्कृति का एक परिचित स्थान रहा है। यहाँ औपचारिक एजेंडा हमेशा नहीं होता, फिर भी स्थानीय घटनाओं, चुनाव, फसल, बाजार, प्रशासन और सामाजिक संबंधों पर बातचीत होती रहती है। कई बार किसी आंदोलन की तैयारी भी ऐसी ही बैठकों और अनौपचारिक संपर्कों से शुरू होती है। चौपाल की शक्ति उसकी निकटता और सामाजिक भरोसे में है। यहाँ बातचीत आमने-सामने होती है। व्यक्ति केवल एक ऑनलाइन पहचान नहीं रहता। उसकी सामाजिक स्थिति, परिवार, गाँव और स्थानीय संबंध उसे पहचाने जाने योग्य बनाते हैं। पर इसी कारण चौपाल की सीमाएँ भी हैं। जो लोग सामाजिक रूप से हाशिये पर हैं, वे हमेशा समान रूप से बोल नहीं पाते।

3. किसान सभा और संगठन

भारत में किसान संगठनों का राजनीतिक इतिहास लंबा है। किसान सभाएँ और यूनियन किसानों की शिकायतों को संगठित राजनीतिक मांगों में बदलने का माध्यम रही हैं। व्यक्तिगत समस्या को सामूहिक समस्या में बदलना इन संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। किसान आंदोलन 2020–21 में यह भूमिका स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। जहाँ इस आंदोलन के समन्वय में 500 से अधिक किसान संगठनों का संयुक्त किसान मोर्चा का महत्वपूर्ण संगठनात्मक ढाँचा था। यही वह बिंदु है जहाँ डिजिटल सक्रियता को समझने में सावधानी जरूरी है। किसान आंदोलन का संगठन शून्य से सोशल मीडिया पर नहीं बना था। इसके पीछे पहले से मौजूद संगठनात्मक संबंध थे। डिजिटल प्लेटफ़ॉर्मों ने उस संरचना को एक नया संचार माध्यम दिया।

किसान आंदोलन 2020-21: राजनीतिक पृष्ठभूमि

2020 में संसद ने तीन कृषि कानून पारित किए। इन कानूनों को क्रमशः कृषि उपज व्यापार और वाणिज्य (संवर्धन और सरलीकरण) अधिनियम, 2020, कृषक (सशक्तिकरण और संरक्षण) कीमत आश्वासन और कृषि सेवा पर करार अधिनियम, 2020, तथा आवश्यक वस्तुएँ (संशोधन) अधिनियम, 2020 के रूप में दर्ज किया गया है। किसान संगठनों, विशेषकर पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान से जुड़े संगठनों ने इन कानूनों को लेकर गंभीर आपत्तियाँ व्यक्त कीं। आंदोलन का एक प्रमुख मुद्दा न्यूनतम समर्थन मूल्य और कृषि बाजार की मौजूदा संरचना से जुड़ा था। किसानों के एक हिस्से को आशंका थी कि नई व्यवस्था का प्रभाव मंडियों और उनकी मूल्य-सुरक्षा पर पड़ सकता है। 26 नवंबर 2020 के 'दिल्ली चलो' आह्वान के बाद किसानों की बड़ी संख्या दिल्ली की सीमाओं की ओर बढ़ी। सिंघू, टिकरी, गाज़ीपुर और शाहजहाँपुर सहित विभिन्न स्थानों पर धरने और आंदोलन की व्यवस्थाएँ निर्मित हुईं। जो लगभग तेरह महीने तक शांतिपूर्ण जन आंदोलन के रूप में चलता रहा था। इस आंदोलन को केवल कृषि नीति के विरोध के रूप में देखने पर इसकी राजनीतिक जटिलता का एक हिस्सा छूट जाता है। आंदोलन ने नागरिक अधिकार, प्रतिनिधित्व, राज्य की जवाबदेही, कृषि नीति और लोकतांत्रिक संवाद के प्रश्नों को भी राजनीतिक विमर्श का हिस्सा बनाया।

आंदोलन का सामाजिक आधार

किसान आंदोलन की एक प्रमुख विशेषता इसका विविध सामाजिक आधार था। इसमें अलग-अलग जाति, धर्म, लिंग और आयु वर्गों के किसानों की भागीदारी दिखाई दी थीं। बड़े सामाजिक आंदोलन केवल नारे से नहीं टिकते। उनके लिए भोजन, परिवहन, चिकित्सा, स्वयंसेवी श्रम, संचार, मंच और संगठनात्मक निर्णय जैसी अनेक व्यवस्थाएँ चाहिए होती हैं। आंदोलन के धरना स्थलों पर सामुदायिक जीवन विकसित होना इस बात का संकेत था कि आंदोलन राजनीतिक विरोध के साथ सामाजिक संगठन का भी रूप ले चुका था। ग्रामीण समाज के संबंधों का महत्व यहाँ स्पष्ट

होता है। स्थानीय संपर्क लोगों को आंदोलन तक पहुँचाते हैं। परिवार और समुदाय कई बार आर्थिक और सामाजिक सहायता उपलब्ध कराते हैं। किसान संगठन आंदोलन के निर्णय और कार्यक्रमों का समन्वय करते हैं। यह पूरा नेटवर्क केवल ऑनलाइन नहीं है। यहीं से यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल सक्रियता को किसान आंदोलन की मूल सामाजिक शक्ति समझना ठीक नहीं होगा। डिजिटल माध्यम ने आंदोलन का विस्तार किया, लेकिन आंदोलन को चलाने वाली सामाजिक ऊर्जा का आधार व्यापक रूप से भौतिक और संगठनात्मक ही था।

आंदोलन की डिजिटल सक्रियता

किसान आंदोलन शुरू होने के पहले से ही भारत में सोशल मीडिया राजनीतिक संचार का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन चुका था। इस बीच आंदोलन की जानकारी, भाषण, तस्वीरें, वीडियो और अलग-अलग संगठनों की घोषणाएँ डिजिटल मंचों पर प्रसारित हुईं। WhatsApp Groups स्थानीय स्तर पर सूचना के प्रसार में उपयोगी रहे। Facebook और YouTube ने लंबे भाषणों, सभाओं और लाइव प्रसारण को व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचाया। Twitter जो अब X हो चुका है। उसपर हैशटैग के माध्यम से राजनीतिक विमर्श तैयार हुआ। Telegram जैसे स्वतंत्र माध्यमों ने संदेशों के वितरण के अतिरिक्त चैनल उपलब्ध कराए। यहाँ डिजिटल माध्यम का सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्य शायद "दृश्यता" का था। दिल्ली की सीमा पर बैठे किसान उस स्थान से बाहर भी दिखाई देने लगे। किसी धरने का वीडियो, किसी किसान का वक्तव्य या किसी सामुदायिक गतिविधि की तस्वीर डिजिटल नेटवर्क में प्रसारित होकर दूसरे सामाजिक समूहों तक पहुँच सकती थी। साथ ही डिजिटल विभाजन, गलत सूचना, एल्गोरिदमिक पूर्वाग्रह, प्लेटफ़ॉर्म नियंत्रण और निगरानी जैसी सीमाओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। यहाँ "संभावना" और "स्थापित तथ्य" के बीच अंतर बनाए रखना जरूरी है। डिजिटल माध्यम किसी आंदोलन की पहुँच बढ़ा सकते हैं लेकिन यह अपने आप नहीं मान लिया जाना चाहिए कि हर डिजिटल गतिविधि वास्तविक राजनीतिक प्रभाव में बदल जाती है।

सूचना के प्रसार से राजनीतिक संचार तक

राजनीतिक संचार में केवल सूचना भेजना पर्याप्त नहीं है। यह भी महत्वपूर्ण है कि किसकी सूचना विश्वसनीय मानी जाती है, कौन-सा संदेश साझा होता है और कौन-सा संदेश राजनीतिक अर्थ ग्रहण करता है। किसान आंदोलन में कई प्रकार की सामग्री प्रसारित हुई। सरकार की नीतियों के विश्लेषण से लेकर आंदोलन की गतिविधियों तक, किसान नेताओं के वक्तव्यों से लेकर समर्थक नागरिकों की सामग्री तक, डिजिटल मंचों पर बहस जारी रही। आंदोलन की छवियों ने भी राजनीतिक अर्थ बनाया। एक किसान की तस्वीर केवल तस्वीर नहीं रहती। वह "किसान" की सार्वजनिक छवि का हिस्सा बन जाती है। किसी वृद्ध किसान का वक्तव्य आंदोलन की नैतिकता को दर्शाने का माध्यम बन सकता है। किसी महिला प्रतिभागी की उपस्थिति आंदोलन की सामाजिक संरचना के बारे में एक अलग संदेश दे सकती है। इस स्तर पर डिजिटल माध्यम सूचना और राजनीति के बीच दूरी कम करते हैं। लेकिन डिजिटल राजनीति का एक दूसरा पहलू भी है। एक ही घटना की अनेक व्याख्याएँ संभव होती हैं। पक्षधरता बढ़ने पर राजनीतिक संदेश तथ्य से अधिक पहचान का प्रश्न बन सकता है। ऐसी स्थिति में जानकारी की जगह भावनात्मक प्रतिक्रिया हावी हो सकती है

डिजिटल मंच और वैकल्पिक आख्यान

आधुनिक लोकतंत्र में राजनीतिक संघर्ष केवल नीतियों के स्तर पर नहीं होता। यह इस बात पर भी होता है कि किसी नीति या आंदोलन को किस भाषा में सार्वजनिक रूप से समझाया जाए। यहीं फ्रेमिंग का प्रश्न आता है। Goffman (1974) और बाद में Snow तथा Benford (1988) की फ्रेमिंग परंपरा यह बताती है कि सामाजिक आंदोलन किसी मुद्दे को विशेष अर्थ-संरचना में प्रस्तुत करते हैं। जो किसान आंदोलन के संदर्भ में "किसान बनाम कॉर्पोरेट", "अन्नदाता

बनाम सरकार" और "लोकतंत्र बनाम तानाशाही" जैसे फ्रेमों की ओर संकेत करता है।इन फ्रेमों का राजनीतिक महत्व इसलिए है क्योंकि वे जटिल नीतिगत प्रश्न को एक ऐसी भाषा में बदलते हैं जिसे आम जनता समझ और साझा कर सके। डिजिटल माध्यम इस प्रक्रिया को तेज करते हैं। कोई एक नारा, हैशटैग या दृश्य संदेश आंदोलन की पहचान बन सकता है।

फ्रेमिंग को केवल प्रचार के रूप में देखना भी उचित नहीं है। राजनीतिक आंदोलन अपने अनुभवों को अर्थ देने के लिए फ्रेम तैयार करते हैं। किसान की आजीविका, कृषि बाजार, फसल का दाम और सरकारी नीति के प्रश्न एक साझा राजनीतिक कहानी में जुड़ते हैं। यहीं डिजिटल माध्यमों की शक्ति और जोखिम दोनों हैं। वे वैकल्पिक आख्यान को जगह देते हैं परन्तु अनेक बार आंशिक जानकारी को भी बहुत तेजी से प्रसारित करते हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र : चौपाल से डिजिटल मंच तक

हेबरमास ने सार्वजनिक क्षेत्र को उस स्थान के रूप में समझा जहाँ लोग सार्वजनिक महत्व के मुद्दों पर विचार करते हैं और सत्ता से जुड़े प्रश्नों पर विमर्श करते हैं (Habermas, 1989)। भारतीय अनुभव में चौपाल, सभा, पंचायत और किसान संगठन के मंचों को इस दृष्टि से देखा जा सकता है हालांकि वे पूर्णतः समावेशी नहीं रहे हैं।

इसी सन्दर्भ में डिजिटल सार्वजनिक क्षेत्र ने भागीदारी की एक नई संभावना पैदा की। अब किसी व्यक्ति को अपनी बात कहने के लिए हमेशा किसी औपचारिक संगठन का सदस्य होना जरूरी नहीं है। वह सीधे सोशल मीडिया पर अपनी बात रख सकता है। इस परिवर्तन ने राजनीतिक संचार को कुछ हद तक विकेंद्रीकृत किया है।

लेकिन डिजिटल सार्वजनिक क्षेत्र में भी शक्ति संबंध हैं। प्लेटफ़ॉर्म कंपनियाँ अपने नियमों के माध्यम से तय करती हैं कि किस प्रकार की सामग्री उपलब्ध रहेगी। एल्गोरिदम, सामग्री की दृश्यता को प्रभावित करते हैं। लोकप्रियता और राजनीतिक महत्व एक ही चीज नहीं होते। कई बार उत्तेजक सामग्री तथ्यपूर्ण सामग्री से अधिक चर्चा हासिल कर सकती है। इसलिए डिजिटल मंच को आदर्श लोकतांत्रिक सार्वजनिक क्षेत्र मान लेना उचित नहीं होगा। वह भी सत्ता, बाजार और तकनीकी ढाँचे से प्रभावित सार्वजनिक क्षेत्र है।

सामाजिक पूँजी और जन लामबंदी

किसी आंदोलन की शक्ति केवल लोगों की संख्या में नहीं होती। लोगों के बीच संबंध, भरोसा और सहयोग भी जरूरी है। पुटनम की सामाजिक पूँजी की अवधारणा इस बिंदु को समझने में उपयोगी है। *Bonding social capital* समान या निकट समूहों के भीतर संबंध को मजबूत करती है, जबकि *bridging social capital* विभिन्न समूहों के बीच पुल का काम करती है (Putnam, 2000)। किसान आंदोलन में दोनों संभावनाएँ देखी जा सकती हैं। किसान संगठनों और ग्रामीण सामाजिक नेटवर्कों ने समान अनुभवों और साझा हितों के आधार पर लोगों को जोड़ा। यह bonding का आधार था। जब आंदोलन का संदेश क्षेत्रीय सीमाओं से आगे गया और विभिन्न सामाजिक समूहों के लोग उससे जुड़े, तब bridging के अवसर बने। डिजिटल नेटवर्क इसमें सहायक हो सकते हैं। एक गाँव में शुरू हुई चर्चा दूसरे जिले में पहुँच सकती है। स्थानीय किसान संगठन की गतिविधि किसी राष्ट्रीय दर्शक वर्ग के सामने आ सकती है। विदेशों में रहने वाले लोग भी डिजिटल माध्यम से समर्थन व्यक्त कर सकते हैं। लेकिन डिजिटल संपर्क हमेशा स्थायी सामाजिक पूँजी नहीं बनाता। कई ऑनलाइन संबंध क्षणिक होते हैं। आंदोलन के लिए स्थायी संगठनात्मक सहयोग तभी बनता है जब डिजिटल जुड़ाव के साथ वास्तविक सामाजिक संपर्क भी हो।

McCarthy और Zald (1977) के संसाधन जुटाव सिद्धांत के अनुसार सामाजिक आंदोलन केवल असंतोष के कारण सफल नहीं होते। संगठन, नेतृत्व, आर्थिक संसाधन, संचार और मानव श्रम जैसे साधनों की आवश्यकता होती है। किसान आंदोलन में यह पक्ष महत्वपूर्ण था। महीनों तक चलने वाले आंदोलन के लिए भोजन, परिवहन, चिकित्सा,

सुरक्षा, संचार और सार्वजनिक कार्यक्रमों की आवश्यकता थी। केवल सोशल मीडिया के माध्यम से ऐसी व्यवस्था संभव नहीं होती। डिजिटल तकनीक ने संचार लागत कम की होगी, सूचना की गति बढ़ाई होगी और विभिन्न स्थानों के कार्यकर्ताओं के बीच समन्वय आसान किया होगा। लेकिन संगठनात्मक संसाधनों की जगह तकनीक नहीं ले सकती। यही कारण है कि किसान आंदोलन का अनुभव उन डिजिटल आंदोलनों से अलग है जो बहुत तेजी से ऑनलाइन लोकप्रिय होते हैं और फिर जल्दी बिखर जाते हैं। किसान आंदोलन के पीछे संगठन थे और वही संगठन आंदोलन की निरंतरता के लिए महत्वपूर्ण रहे।

नेटवर्क समाज और किसान आंदोलन- Manuel Castells ने नेटवर्क समाज की अवधारणा के माध्यम से आधुनिक संचार व्यवस्था और शक्ति संबंधों को समझने का प्रयास किया है। उनके अनुसार सूचना और संचार तकनीक ने शक्ति के संचालन के तरीकों को बदला है। सामाजिक आंदोलन भी नेटवर्कों के माध्यम से नए रूप ग्रहण कर सकते हैं (Castells, 1996, 2012)।

किसान आंदोलन में यह बात दिखाई देती है कि भौतिक आंदोलन और डिजिटल नेटवर्क एक साथ सक्रिय थे। आंदोलन का वास्तविक राजनीतिक केंद्र दिल्ली की सीमाओं पर था, लेकिन उसकी डिजिटल उपस्थिति कहीं अधिक विस्तृत थी। यह भौतिक और डिजिटल नेटवर्क का मिलन था। फिर भी किसान आंदोलन को पूरी तरह Castells के "leaderless" नेटवर्क्ड आंदोलन के मॉडल में नहीं रखा जा सकता। किसान यूनियनों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। इसका अर्थ यह है कि नेटवर्क तकनीक पारंपरिक संगठन के विपरीत नहीं है। दोनों एक ही आंदोलन में एक साथ काम कर सकते हैं। अब यहाँ सवाल उठता है कि **क्या डिजिटल सक्रियता ने पारंपरिक जनमंचों को पीछे छोड़ दिया?** यह प्रश्न इस शोध पत्र के केंद्र में है। उपलब्ध सामग्री को देखते हुए उत्तर यह है कि अभी तक ऐसा नहीं हुआ है। पारंपरिक जनमंच कई ऐसे संसाधन उपलब्ध कराते हैं जो डिजिटल मंच नहीं दे सकते। वहाँ आमने-सामने की बातचीत होती है। विश्वास का सामाजिक आधार मौजूद होता है। निर्णय सामूहिक रूप से लिए जा सकते हैं। व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति और अनुभवों के साथ सामने आता है। डिजिटल मंचों की शक्ति अलग प्रकार की है। वे समय और दूरी को कम करते हैं। संदेश को बड़ी संख्या में लोगों तक पहुँचाते हैं। अभियान को अधिक दृश्यता दे सकते हैं। नेताओं के भाषण या स्थानीय घटनाओं को व्यापक दर्शक तक पहुँचाया जा सकता है।

इसलिए इन दोनों की तुलना "कौन अधिक शक्तिशाली है" के आधार पर करने के बजाय यह देखना ज्यादा उपयोगी है कि दोनों एक-दूसरे का काम कैसे पूरा करते हैं। एक ग्राम सभा आंदोलन की स्थानीय दिशा तय कर सकती है। एक WhatsApp समूह उसी निर्णय को आगे फैलाने का माध्यम बन सकता है। एक किसान नेता की सभा भौतिक रूप से सीमित हो सकती है। उसका वीडियो हजारों लोगों तक पहुँच सकता है। डिजिटल माध्यम इस अर्थ में पारंपरिक राजनीति का विस्तार कर सकते हैं।

इसलिए किसान आंदोलन के संदर्भ में पारंपरिक और डिजिटल मंचों को दो अलग दुनिया मानना वास्तविकता को सरल बना देना होगा। आंदोलन का वास्तविक अनुभव उनके संयोग में दिखाई देता है। इस संयोग की कुछ स्पष्ट विशेषताएँ थीं-

पहली, संगठनात्मक आधार पारंपरिक था। किसान संगठन, क्षेत्रीय नेटवर्क और स्थानीय सामाजिक संपर्क लोगों को जोड़े हुए थे।

दूसरी, संचार का एक महत्वपूर्ण भाग डिजिटल था। सूचनाएँ, कार्यक्रम, भाषण, चित्र और वीडियो सोशल मीडिया के माध्यम से फैलते थे।

तीसरी, राजनीतिक दृश्यता डिजिटल माध्यम से बढ़ी। दिल्ली की सीमाओं पर बैठा आंदोलन राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय चर्चा में आया।

चौथी, डिजिटल सक्रियता की विश्वसनीयता का आधार कई बार भौतिक आंदोलन था। लोग स्क्रीन पर वही आंदोलन देख रहे थे जो वास्तविक स्थान पर चल रहा था।
यहाँ "सामूहिक" शब्द केवल दो माध्यमों के जोड़ को नहीं अभिव्यक्त करेगा बल्कि यह राजनीतिक सहभागिता की बदलती प्रकृति को समझने का प्रयास भी करेगा। आज नागरिक किसी मुद्दे पर पहले ऑनलाइन जानकारी प्राप्त करता है, फिर स्थानीय बैठक में शामिल होता है, फिर उसी बैठक की सामग्री सोशल मीडिया पर साझा करता है। राजनीति की ये परतें अलग नहीं रह गई हैं।

डिजिटल सक्रियता की सीमाएँ

डिजिटल सक्रियता को लोकतांत्रिक विस्तार की प्रक्रिया के रूप में देखना उपयोगी है, लेकिन इसकी सीमाओं की चर्चा किए बिना चित्र अधूरा रहेगा।

डिजिटल विभाजन

गांव मोहल्लों का निवासी हर नागरिक डिजिटल मंचों तक समान रूप से नहीं पहुँच सकता। इंटरनेट का होना और डिजिटल भागीदारी की क्षमता होना अलग बातें हैं। भाषा, उपकरण, डेटा की लागत, डिजिटल साक्षरता और सामाजिक स्थिति फर्क पैदा करते हैं।
यदि राजनीतिक विमर्श तेजी से डिजिटल होता जाता है, तो वह व्यक्ति पीछे छूट सकता है जो डिजिटल मंच पर सक्रिय नहीं है। वृद्ध नागरिक और सीमित संसाधनों वाले समूह इस समस्या का अधिक सामना कर सकते हैं।

गलत सूचना

सोशल मीडिया में सूचना की गति बहुत तेज है। गलत सूचना भी उसी गति से फैल सकती है। किसी आंदोलन के बारे में झूठी खबर या अधूरी जानकारी राजनीतिक धारणा को प्रभावित कर सकती है।
किसान आंदोलन के संदर्भ में यह प्रश्न महत्वपूर्ण था क्योंकि आंदोलन स्वयं तीव्र राजनीतिक ध्रुवीकरण का विषय बना हुआ था। ऐसी स्थिति में नागरिकों के सामने एक ओर आंदोलनकारियों की सामग्री होती है दूसरी ओर सरकार और समर्थक समूहों की सामग्री ऐसे में राजनीतिक सूचना का मूल्यांकन जटिल हो जाता है।

एल्गोरिदमिक दृश्यता

किसी विचार की लोकप्रियता और उसकी दृश्यता हमेशा केवल नागरिक की इच्छा से तय नहीं होती। डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म पर एल्गोरिदम सामग्री को उपयोगकर्ता तक पहुँचाते हैं। इससे यह प्रश्न उठता है कि सार्वजनिक विमर्श के भीतर किसे अधिक दृश्यता मिल रही है।

निगरानी और प्लेटफ़ॉर्म नियंत्रण

डिजिटल माध्यम जितने उपयोगी हैं, उतने ही निगरानी के लिए भी उपयोग किए जा सकते हैं। राज्य और निजी तकनीकी कंपनियों की भूमिका यहाँ महत्वपूर्ण हो जाती है। प्लेटफ़ॉर्म नियम, सामग्री हटाने की प्रक्रिया, अकाउंट प्रतिबंध और इंटरनेट बंदी जैसे प्रश्न नागरिक स्वतंत्रता से सीधे जुड़े हैं।
इसीलिए डिजिटल सक्रियता को केवल लोकतांत्रिक अवसर के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि surveillance, platform governance और counter-measures को भी विश्लेषण का हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

डिजिटल सक्रियता और सुविधापसंद

डिजिटल सक्रियता की आलोचना में *सुविधापसंद* का विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। Evgeny Morozov (2011) के अनुसार ऑनलाइन गतिविधि को वास्तविक राजनीतिक सक्रियता के बराबर मान लेना समस्या पैदा कर सकता है। कोई व्यक्ति किसी हैशटैग को साझा कर सकता है, ऑनलाइन याचिका पर हस्ताक्षर कर सकता है या पोस्ट को "लाइक" कर सकता है। लेकिन जरूरी नहीं कि वह जमीनी राजनीतिक कार्रवाई में भी शामिल हो।
किसान आंदोलन इस दृष्टिकोण को चुनौती देने वाला उदाहरण प्रस्तुत करता है। आंदोलन का डिजिटल पक्ष वास्तविक धरना और संगठनात्मक गतिविधि से अलग नहीं था। लोग ऑनलाइन जानकारी साझा कर रहे थे, लेकिन साथ ही हजारों लोग वास्तविक स्थानों पर मौजूद थे।
Tufekci (2017) ने भी डिजिटल नेटवर्कों की शक्ति और कमजोरी दोनों पर चर्चा की है। डिजिटल माध्यम तेज लामबंदी कर सकते हैं, पर तेज लामबंदी हमेशा दीर्घकालिक रणनीतिक क्षमता पैदा नहीं करती। किसान आंदोलन का अनुभव इस दृष्टि से अलग था, क्योंकि यहाँ डिजिटल संचार के पीछे संगठनात्मक ढाँचा मौजूद था।

महिलाओं, ग्रामीण लोगों और अन्य समूहों की डिजिटल भागीदारी

जन सहभागिता की चर्चा करते समय यह पूछना आवश्यक है कि कौन भाग ले रहा है और कौन पीछे रह जाता है। डिजिटल माध्यम ने बोलने के नए अवसर जरूर दिए लेकिन ये अवसर समान रूप से वितरित नहीं हुए हैं। इसमें महिलाओं की भागीदारी का प्रश्न विशेष महत्व रखता है। ग्रामीण समाज में महिलाओं की सार्वजनिक राजनीतिक उपस्थिति कई बार सामाजिक मान्यताओं और घरेलू जिम्मेदारियों से प्रभावित होती है। डिजिटल उपकरण कुछ महिलाओं को सार्वजनिक संवाद में प्रवेश का अपेक्षाकृत कम प्रत्यक्ष माध्यम उपलब्ध करा सकते हैं। लेकिन डिजिटल पहुँच, परिवार की स्वीकृति, तकनीकी साक्षरता और निजी उपकरणों की उपलब्धता जैसी बाधाएँ बनी रहती हैं।
इसी तरह वृद्ध किसान आंदोलनकारी के लिए डिजिटल नेटवर्क युवा प्रतिभागियों की तुलना में कम सहज हो सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वृद्ध व्यक्ति आंदोलन में कम राजनीतिक रूप से सक्रिय हैं। बल्कि उनकी भागीदारी का माध्यम अलग हो सकता है। यही कारण है कि डिजिटल सक्रियता को जन सहभागिता का पूर्ण पर्याय नहीं माना जाना चाहिए।
लोकतंत्र में नागरिक सक्रियता और राज्य की प्रतिक्रिया एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं। जब कोई आंदोलन बड़ा होता है तो सरकार को किसी न किसी रूप में प्रतिक्रिया देनी पड़ती है। डिजिटल माध्यम इस प्रतिक्रिया की राजनीतिक दृश्यता को भी बदलते हैं। पहले सरकार और आंदोलन के बीच सूचना का अधिकांश प्रवाह पारंपरिक मीडिया से होकर गुजरता था। अब आंदोलनकारी स्वयं सामग्री तैयार कर सकते हैं। सरकार भी अपने डिजिटल चैनलों से अपनी स्थिति स्पष्ट कर सकती है। इस तरह राजनीतिक संचार एक बहु-दिशात्मक प्रक्रिया बन गया है। जो कि किसान आंदोलन में विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहा। आंदोलनकारियों के पास अपना डिजिटल आख्यान था, उनका अपना चैनल था और सरकार के पास अपनी नीति-व्याख्या। मीडिया संस्थान तीसरे पक्ष के रूप में उपस्थित थे। नागरिकों के लिए राजनीतिक सूचना का क्षेत्र बहुस्तरीय हो गया। इसी स्थिति ने "narrative monopoly" को चुनौती दी। राज्य के पास सूचना का एकाधिकार पहले जैसा नहीं रहा। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि राज्य की संचार शक्ति समाप्त हो गई। राज्य के पास संस्थागत संसाधन, प्रशासनिक संरचना और आधिकारिक संचार माध्यम अभी भी मौजूद हैं इसलिए डिजिटल लोकतंत्र में सत्ता का संतुलन सरल नहीं हुआ बल्कि उसने नया रूप लिया है।

किसान आंदोलन और लोकतांत्रिक जवाबदेही

किसान आंदोलन ने लोकतंत्र में जवाबदेही के प्रश्न को भी उठाया। नागरिक किसी नीति का विरोध करते हुए केवल

नीति परिवर्तन की मांग नहीं कर रहे होते। वे यह भी पूछ रहे होते हैं कि नीति कैसे बनी? किन समूहों से चर्चा हुई? और उसके परिणामों के लिए कौन जिम्मेदार होगा?

लोकतांत्रिक व्यवस्था में असहमति की जगह का होना महत्वपूर्ण है। जन आंदोलन उस असहमति को सार्वजनिक रूप देता है। किसान आंदोलन ने यह दिखाया कि संसद से बाहर भी लोकतांत्रिक राजनीति सक्रिय रह सकती है। डिजिटल मंचों ने इस असहमति को जगमग किया। उनकी मदद से आंदोलनकारियों के विचार और गतिविधियाँ व्यापक दर्शक तक पहुँचे। राजनीतिक प्रतिनिधियों, पत्रकारों और नागरिक समूहों के बीच संवाद की नई परिस्थितियाँ पैदा हुईं। हालांकि यहाँ भी सावधानी जरूरी है। डिजिटल दृश्यता अपने आप जवाबदेही स्थापित नहीं करती। जवाबदेही तभी प्रभावी होती है जब सार्वजनिक दबाव संस्थागत प्रक्रिया को प्रभावित करे। इस कारण सड़क और स्क्रीन के बीच संबंध को समझना जरूरी है। डिजिटल राजनीति ने केवल माध्यम नहीं बदला उसने राजनीतिक भाषा की शैली भी बदली है। पहले आंदोलन का संदेश पोस्टर, भाषण, पर्चा और सभा के माध्यम से तैयार होता था। अब छोटे वीडियो, मीम, हैशटैग, ट्वीट, लाइव स्ट्रीम और वायरल पोस्ट भी राजनीतिक भाषा का हिस्सा हैं।

इससे राजनीति अधिक दृश्य और त्वरित हुई है। एक जटिल नीति का संदेश कुछ पंक्तियों में समेटने की कोशिश की जाती है। लंबी राजनीतिक बहस को छोटे वीडियो में बदल दिया जाता है। इसका लाभ यह है कि अधिक लोगों तक पहुँचना आसान हो जाता है। नुकसान यह है कि जटिल मुद्दे अत्यधिक सरल भी किए जा सकते हैं। किसान आंदोलन में कृषि कानूनों का प्रश्न कानूनी, आर्थिक और राजनीतिक रूप से जटिल था। लेकिन व्यापक जनसंचार में इसे अपेक्षाकृत सरल नारों और प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करना आवश्यक था। यही राजनीति में डिजिटल संचार की प्रकृति है- वह बहस को विस्तार भी देता है और उसे संक्षिप्त भी करता है। यहाँ सवाल उठता है कि इस परिवर्तन को कैसे समझा जाए? जन सहभागिता के इस बदलते परिदृश्य को तीन स्तरों पर समझना उपयोगी होगा।

पहला स्तर सामाजिक आधार का है। नागरिक सहभागिता सामाजिक संबंधों, संगठनों और स्थानीय जीवन से निकलती है। दूसरा स्तर राजनीतिक संगठन का है। आंदोलन को नेतृत्व, निर्णय, संसाधन और निरंतरता देने के लिए संगठनात्मक ढाँचा जरूरी है। तीसरा स्तर संचार तकनीक का है। डिजिटल माध्यम आंदोलन की सूचना को तेजी से प्रसारित कर सकते हैं, उसके समर्थन का विस्तार कर सकते हैं और उसकी राजनीतिक दृश्यता को बढ़ा सकते हैं। किसान आंदोलन में ये तीनों स्तर एक साथ दिखाई देते हैं। यही इसकी विशेषता है। यदि केवल सोशल मीडिया पर ध्यान दिया जाए तो आंदोलन की संगठनात्मक जड़ें दिखाई नहीं देंगी। यदि केवल धरना-स्थल पर ध्यान दिया जाए तो डिजिटल संचार की भूमिका कम दिखाई देगी।

इसलिए "सामूहिक जन सहभागिता" की अवधारणा अधिक उपयोगी प्रतीत होती है।

निष्कर्ष

भारत में जन सहभागिता का परिदृश्य बदल रहा है, लेकिन परिवर्तन को केवल पारंपरिक मंचों से डिजिटल मंचों की यात्रा के रूप में नहीं समझा जा सकता। यह परिवर्तन समान रूप से विस्थापन का नहीं बल्कि जोड़ का भी है।

पंचायत, चौपाल, किसान सभा, यूनियन और जनसभा आज भी राजनीतिक जीवन में मौजूद हैं। उनके साथ WhatsApp समूह, Facebook पेज, YouTube चैनल, Twitter/X, इंस्टाग्राम अभियान, रील और अन्य डिजिटल नेटवर्क जुड़ गए हैं। दोनों के बीच संबंध एक नए प्रकार की राजनीतिक सहभागिता पैदा कर रहा है।

2020-21 का किसान आंदोलन इस प्रक्रिया का एक स्पष्ट उदाहरण है। आंदोलन की संगठनात्मक शक्ति किसान संगठनों, ग्रामीण सामाजिक नेटवर्क और प्रत्यक्ष सामूहिक कार्रवाई में थी। डिजिटल माध्यमों ने आंदोलन को सूचना, दृश्यता और व्यापक संचार की अतिरिक्त क्षमता दी। इसलिए इस आंदोलन को न तो परंपरागत आंदोलन का अवशेष कहा जा सकता है और न ही शुद्ध डिजिटल आंदोलन। यह दोनों के बीच बने राजनीतिक संबंध का उदाहरण है।

डिजिटल सक्रियता ने नागरिकों के लिए अभिव्यक्ति और संगठन के नए अवसर अवश्य पैदा किए हैं। लेकिन डिजिटल माध्यमों को लोकतंत्र का स्वाभाविक विस्तार मान लेना उचित नहीं होगा। डिजिटल विभाजन, गलत सूचना, एल्गोरिदमिक दृश्यता, प्लेटफ़ॉर्म नियंत्रण और निगरानी की समस्याएँ वास्तविक हैं। कुछ लोग डिजिटल राजनीतिक क्षेत्र में बहुत सक्रिय होंगे, जबकि कुछ समूह अपेक्षाकृत पीछे छूट सकते हैं।

इसलिए आगे का प्रश्न यह नहीं होना चाहिए कि डिजिटल माध्यम पुराने जनमंचों की जगह ले पाएँगे या नहीं। ज्यादा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि दोनों किस तरह साथ काम करेंगे। भारतीय लोकतंत्र में जन सहभागिता का भविष्य संभवतः इसी संबंध से तय होगा।

किसान आंदोलन की सबसे महत्वपूर्ण सीख यही है कि तकनीक सामाजिक संगठन का विकल्प नहीं बनी। उसने मौजूदा संगठनात्मक और सामाजिक संबंधों को एक नई संचार क्षमता दी। राजनीतिक आंदोलन जमीन पर भी बनता है और नेटवर्क पर भी। आज दोनों के बीच की दूरी पहले की तुलना में बहुत कम हो गई है।

संदर्भ सूची

1. Arnstein, S. R. (1969). A ladder of citizen participation. *Journal of the American Institute of Planners, 35*(4), 216–224.
2. Benkler, Y. (2006). *The wealth of networks: How social production transforms markets and freedom*. Yale University Press.
3. Castells, M. (1996). *The rise of the network society*. Blackwell.
4. Castells, M. (2012). *Networks of outrage and hope: Social movements in the Internet age*. Polity Press.
5. Goffman, E. (1974). *Frame analysis: An essay on the organization of experience*. Harvard University Press.
6. Habermas, J. (1989). *The structural transformation of the public sphere: An inquiry into a category of bourgeois society*. MIT Press. (Original work published 1962)
7. McCarthy, J. D., & Zald, M. N. (1977). Resource mobilization and social movements: A partial theory. *American Journal of Sociology*, *82*(6), 1212–1241.
8. Morozov, E. (2011). *The net delusion: The dark side of Internet freedom*. PublicAffairs.
9. Putnam, R. D. (2000). *Bowling alone: The collapse and revival of American community*. Simon & Schuster.
10. Snow, D. A., & Benford, R. D. (1988). Ideology, frame resonance, and participant mobilization. In B. Klandermans, H. Kriesi, & S. Tarrow (Eds.), *From structure to action: Comparing social movement research across cultures* (pp. 197–217). JAI Press.
11. Tufekci, Z. (2017). *Twitter and tear gas: The power and fragility of networked protest*. Yale University Press.
12. Verba, S., Schlozman, K. L., & Brady, H. E. (1995). *Voice and equality: Civic voluntarism in American politics*. Harvard University Press.